माँ-बाप का हक़

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै0 कल्बे जवाद नक़वी साहब क़िब्ला

माँ–बाप को जितनी अहमियत व बुज़ुर्गी इस्लाम ने दी है वह किसी मज़हब में नहीं है। इनकी बुज़ुर्गी के लिए शायद सिर्फ इतना लिख देना ही काफी होगा कि अगर माँ–बाप में से कोई अपनी ज़रूरत के लिए अपनी किसी औलाद को मुस्तहब काम से रोक दे तो वह मुस्तहब काम हराम हो जायगा और अगर किसी मुस्तहब काम का हुक्म दे दें तो वह मुस्तहब काम वाजिब हो जायगा।

कुर्आने मजीद में माँ–बाप की बुज़ुर्गी

खुदा की किताब कुर्आन मजीद में जितना माँ–बाप के बारे में ज़ोर दिया गया है किसी और मामले में नहीं मिलेगा। जगह–जगह अपनी इबादत और शुक्र अदा करने के हुक्म के साथ–साथ माँ–बाप के साथ अच्छे सुलूक का तज़किरा किया है।

जैसा कि इरशाद होता हैः और जब हमने बनीइस्राईल से ये अहद लिया कि तुम सब अल्लाह के अलावा किसी की इबादत न करो, और माँ–बाप के साथ अच्छा सुलूक करो।

(सूरए बक़रः 83)

दूसरी जगह पर इरशाद हो रहा हैः अल्लाह की इबादत करो, किसी को उसका शरीक न बनाओ और माँ–बाप के साथ अच्छा सुलूक करो। (सूरए बक़रः 36)

सबसे ज़्यादा ज़ोर और तफ़्सील सूर–ए–असरा में हैः ''और तुम्हारे परवरदिगार ने ये फैसला कर दिया कि उसके अलावा किसी की इबादत न करो और माँ–बाप के साथ अच्छा सुलूक करो।'' यहाँ पर भी अपनी इबादत के ज़िक्र के साथ ही साथ माँ–बाप के साथ अच्छे सुलूक को बयान किया गया है जैसे कुदरत का एलान है कि मेरी इबादतों में इतने न खो जाओ कि अपने माँ–बाप के साथ अच्छे सुलूक को भूल जाओ। शायद इस बात की तरफ भी इशारा हो कि मेरी इबादतों का सलीक़ा उस वक़्त नहीं आ सकता जब तक माँ–बाप के साथ अच्छा सुलूक न करो।

''जब दोनों में से एक या दोनों तुम्हारे पास हों और बूढ़े हो जाएं तो तुम्हें उफ़ कहने की भी इजाज़त नहीं है।''

औलाद का सबसे सख़्त इम्तिहान उस वक़्त होता है जब माँ–बाप बूढ़े हो जाते हैं, छोटी–छोटी बातों पर गुस्सा करते हैं, बात–बात पर नाराज़ हो जाते हैं, चलने फिरने से लाचार हैं, बिस्तर पर पड़े होते हैं। हर वक़्त उनकी सेवा की ज़रूरत है। मुमकिन है कभी उनकी गन्दगी भी साफ करना पड़े। ऐसे वक़्त ख़ुदावन्दे आलम देख रहा होता है कि कहीं माथें पर शिकन तो नहीं, कभी ज़बान पर शिकायत के अलफाज़ तो नहीं। बुढ़ापे में कोई बात चाहे हो चाहे न हो गुस्सा आ जाता है लेकिन शरीअत का हुक्म है कि जवाब में उफ भी नहीं कह सकते ''कभी उनसे झिड़क कर बात न करना'', ''हमेशा अच्छे और नर्म अन्दाज़ से बात करना'', ''हमेशा उनके सामने अपने कन्धों को झुकाए रखो'' यह उस ज़ात का फ़रमाना है जो इन्सान की रग–रग को जानता है। हम अपने समाज में बराबर देखते हैं कि समाज के

किसी नीचे तबक़े से तअल्लुक़ रखने वाले किसी शख़्स ने अपनी औलाद को मेहनत मज़दूरी करके पढ़ा लिखाकर किसी क़ाबिल बना दिया और किसी ऊँचे दुनियावी ओहदे पर पहुँच गया तो उसे अपने साथियों से बाप की पहचान कराने में शर्म और ज़िल्लत महसूस होती है। आयत में शायद इसी बात की तरफ इशारा है कि लाख तुम दुनियावी तौर पर बढ़ जाओ और तुम्हारे माँ–बाप देखने में कम दर्जे वाले हों लेकिन कभी उनको ज़लील न समझना बल्कि हमेशा अपने को उनके सामने ज़लील समझते रहना। ''यह दुआ माँगते रहो कि ख़ुदावन्दे आलम माँ–बाप पर रहम नाज़िल फरमा जिस तरह उन्होंने बचपने में हम पर रहम खाकर हमारी परवरिश की थी'' यह दुआ हमेशा औलाद को यह याद दिलाती रहेगी कि अगर इस वक़्त माँ–बाप उनके मोहताज हैं तो कभी यह भी अपने माँ–बाप के मोहताज थे और आलाद की ज़िन्दगी माँ–बाप ही के रहम व करम पर है।

माँ–बाप का दर्जा मासूमीन[अ०] की नज़र में

1– जिहाद का मौक़ा था सब लोग अपने–अपने नाम जिहाद पर जाने के लिए पेश कर रहे थे एक जवान ने अल्लाह के रसूले[स०] से कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल[स०] मुझे जिहाद पर जाने का बहुत शौक़ है लेकिन मेरी माँ राज़ी नहीं है क्योंकि उसे मेरी ज़रूरत है तो रसूल[स०] ने फरमायाः जाकर अपनी माँ की सेवा करो एक दिन माँ की सेवा करना एक साल अल्लाह की राह में जिहाद करने से बड़ा है।

2– एक शख़्स अल्लाह के रसूल[स०] के पास आया और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल[स०]! मेरा दामन हर गुनाह से भरा है क्या मेरे लिये भी तौबा है? रसूल[स०] ने पूछा कि क्या तुम्हारे माँ–बाप में से कोई ज़िन्दा है? उसने जवाब दिया मेरा बाप ज़िन्दा है, आपने फ़रमाया जाकर उसकी सेवा करो (यानी जितनी उसकी सेवा करते जाओगे तुम्हारे गुनाह माफ होते चले जाएंगे) इसके बाद हज़रत[स०] ने फ़रमाया अगर इसकी माँ ज़िन्दा होती तो इसके गुनाह ज़्यादा जल्दी माफ़ हो जाते)।

3– इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] का इरशाद है कि एक बार जनाबे मूसा[अ०] ने दुआ के वक़्त एक शख़्स को ख़ुदा के अर्श के साये में देखा। जनाबे मूसा[अ०] ने पूछा यह कौन है? बारगाहे इलाही से जवाब आया इस शख़्स में दो ख़ूबियाँ पाई जाती हैं (1)अपने माँ–बाप के साथ नेकी करता है (2)दूसरों की बुराई से परहेज़ करता है।

4– इमाम हसन असकरी[अ०] के इस इरशाद से माँ–बाप की बुज़ुर्गी का अन्दाज़ा होता है। आप[अ०] ने औलाद को ताकीद की कि अगर माँ–बाप को कोई चीज़ दिया करो तो इस तरह कि तुम्हारा हाथ नीचे हो और माँ या बाप का हाथ ऊपर हो। यानी इस तरह न दिया करो जिस तरह फक़ीर को देते हैं बल्कि इस तरह पेश किया करो जिस तरह किसी बादशाह के दरबार में तोहफ़ा दिया जाता है।

ऊपर बयान की गई आयतों और रिवायतों से यह बिल्कुल साफ़ हो जाता है कि हर औलाद पर माँ–बाप की इज़्ज़त और उनके साथ अच्छा सुलूक करना वाजिब है। उनकी बेइज़्ज़ती करना बल्कि अच्छा सुलूक न करना भी बहुत बड़ा गुनाह है। ऐसा गुनाह कि जब तक ख़ुद माँ–बाप माफ़ न करें औलाद की मग़फिरत मुमकिन नहीं है और ऐसी औलाद लाख दूसरे नेक काम करे उसे कोई काम फायदा पहुँचाने वाला नहीं है और सिवाए जहन्नम के उसका और कोई ठिकाना नहीं है।

